भगवान् सूर्य की शिवभक्ति

पूर्वकाल में त्रिभुवन विख्यात पञ्चगङ्गा तीर्थ में भगवान् सूर्य ने अत्यन्त उग्र तपस्या की थी। गभस्तीश्वर नामक महालिङ्ग और भक्तों को मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गला नामक गौरीदेवी की स्थापना करके उनकी आराधना करते हुए भगवान् सूर्य तीव्र तप के तेज से अत्यन्त जाज्वल्यमान हो उठे। उस समय पृथ्वी और आकाश के बीच का समस्त प्रदेश त्रिलोकी को दग्ध करने में समर्थ सूर्य- किरणों द्वारा अत्यन्त सन्तप्त हो उठा। जैसे कदम्ब फल के ऊपर सब ओर से पुष्प ही दिखायी देते हैं, फल नहीं; उसी प्रकार ऊपर, नीचे और अगल-बगल में सब ओर केवल सूर्य की किरणें ही दिखायी देती थीं, सूर्यदेव नहीं। तेज और तपस्या की राशिभूत सूर्य की तपोमयी ज्वालाओं के तीव्र भय से तीनों लोकों के समस्त चराचर प्राणी काँप उठे। सब मन-ही-मन सोचने लगे-अहो! सूर्यदेव सम्पूर्ण जगत् के आत्मा हैं। यदि वही हमें जलाने लगे, तो कौन हमारा रक्षक होगा। सूर्य समस्त संसार के नेत्र हैं। ये ही सब ओर प्रकाश फैलाते हैं और प्रतिदिन प्रातःकाल मृतप्राय जगत् को नूतन जीवन देकर जाग्रत् करते हैं। ये ही अन्धकारमय अन्धकूप में पड़े हुए समस्त प्राणियों का चारों ओर अपने किरणरूप हाथ फैलाकर उद्धार करते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व को व्याकुल देख विश्वरक्षक भगवान् विश्वनाथ सूर्यदेव को वर देने के लिये गये। वे समाधि में स्थित होकर अपने-आपको भी भूल गये थे। अत्यन्त निश्चलभाव से बैठे हुए अंशुमाली सूर्य को देखकर भगवान् शङ्कर ने कहा-'आकाश में प्रकाशित होनेवाले सूर्य! अब तपस्या की आश्यकता नहीं है, वह पूरी हो गयी। अब कोई वर माँगो।'

सूर्यदेव ध्यान एवं समाधि के द्वारा अपनी इन्द्रियवृत्तियों को रोककर स्थिर बैठे थे। अतः उन्होंने भगवान् शंङ्कर की बात नहीं सुनी। तब शिवजी ने अपने हाथ से उनका स्पर्श किया। उनका स्पर्श पाते ही विश्वलोचन सूर्य ने अपनी आँखें खोलीं और अपने आराध्यदेव भगवान् शिव को प्रत्यक्ष देखकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने इस प्रकार स्तुति की-

सूर्य बोले-देवाधिदेव! जगत्पते! सर्वव्यापी! भर्ग! भीम! भव! चन्द्रभूषण! भूतनाथ तथा भवभयहारी देव! आप प्रणत जनों को मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। चन्द्रचूड! मृड! धूर्जटे! हर! त्र्यक्ष! दक्ष के सैकड़ों यज्ञों का नाश करनेवाले शान्त! शाश्वत! शिवापते! शिव! आप प्रणत जनों को मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। नीललोहित! अभीष्ट वस्तु देनेवाले त्रिलोचन! विरूपाक्ष! व्योमकेश! जीवों के अज्ञानमय बन्धन का नाश करनेवाले! आप प्रणत जनों की मनोवाञ्छा पूर्ण करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है। वामदेव! शितिकण्ठ! शूलपाणे! चन्द्रशेखर! नागेन्द्रभूषण! कामनाशन! पशुपते! महेश्वर! आप शरणागतों की इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। त्र्यम्बक! त्रिपुरारे! ईश्वर! सबकी रक्षा करनेवाले त्रिनयन! तीनों वेदस्वरूप! कालकूट के विष का दलन करनेवाले! काल के भी काल! आप प्रणत जनों की

मनोवाञ्छित वस्तुओं को देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप जहाँ हैं वहाँ रात्रि का अभाव है। शर्व! आप सर्वव्यापी हैं! स्वर्गमार्ग का सुख देनेवाले तथा अपवर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति करानेवाले हैं। अन्धकासुर के शत्रु तथा जटाजूटधारी हैं। प्रभो! आप प्रणत जनों की इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है। आप भक्तों के लिये कल्याणकारी और दुष्टों के लिये उग्र हैं। गिरिराज-नन्दिनी के प्राणवल्लभ! आप ही सबके वास्तविक पति हैं। विश्वनाथ! ब्रह्मा और विष्णु भी आपकी स्तुति करते हैं। आप ही वेदों के द्वारा जानने योग्य परमात्मा हैं, आपको सबकी चेष्टाओं का ज्ञान है। नाथ! आप अपने चरणों में मस्तक झुकानेवाले भक्तों को उनकी अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं, आपको नमस्कार है। यह विश्व आपका ही स्वरूप है, तथापि आप सबसे परे हैं, आप ही निराकार ब्रह्म हैं, आप में कुटिलता का सर्वथा अभाव हैं, आप अमृत (मोक्ष) देनेवाले हैं, मन और वाणी की पहुँच से सर्वथा दूर हैं। दूरतक पहुँचे हुए सर्वव्यापी परमेश्वर! आप प्रणत जनों को मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्रदान करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है।*

इस प्रकार स्तुति करके सूर्य ने महादेवजी और पार्वतीजी की परिक्रमा की। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर उन्होंने शिव के बामाङ्ग भाग में विराजमान गौरी देवी का मङ्गलाष्टक नामक महास्तोत्र से स्तवन करके सूर्यदेव ने महादेवजी तथा मङ्गलागौरी को बारंबार प्रणाम किया और उन दोनों के सामने चुपचाप पड़े रहे।

---

* **देवदेव जगताम्पते विभो भर्ग भीम भव चन्द्रभूषण।**
भूतनाथ भवभीतिहारक त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद।।
चन्द्रचूड मृड धूर्जटे हर त्र्यक्ष दक्षशततन्तुशातन।
शान्त शाश्वत शिवापते शिव त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद।।
नीललोहित समीहितार्थद द्व्येकलोचन विरूपलोचन।
व्योमकेश पशुपाशनाशन त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद।।
वामदेव शितिकण्ठ शूलभृच्चन्द्रशेखर फणीन्द्रभूषण।
कामकृत्पशुपते महेश्वर त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद।।
त्र्यम्बक त्रिपुरसूदनेश्वर त्राणकृत्त्रिनयन त्रयीमय।
कालकूटदलनान्तकान्तक त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद।।
शर्वरीरहित शर्व सर्वग स्वर्गमार्गसुखदापवर्गद।
अन्धकासुररिपो कपर्दभृत् त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद।।
शङ्करोग्र गिरिजापते पते विश्वनाथ विधिविष्णुसंस्तुत।
वेदवेद्य विदिताखिलेङ्गित त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद।।
विश्वरूप पररूपवर्जित ब्रह्म जिह्मरहितामृतप्रद।
वाङ्मनोविषयदूर दूरग त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद।।

(स्क. पु. काशीखण्ड पू. 49/46-53)

तब महादेवजी ने कहा–सूर्यदेव! उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो। महामते! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। मित्र! तुम तो सदा मेरे नेत्र में ही स्थित हो, जिससे मैं समस्त चराचर जगत् को देखता हूँ। तुम मेरी आठ मूर्तियों में से एक हो। आज से तुम सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण तेजों का समुदाय तथा सबके सम्पूर्ण कर्मों के ज्ञाता होओ। अपने सब भक्तों के समस्त दु:खों को दूर करो। तुमने मेरे चौसठ नामों के द्वारा जो यह अष्टकस्तोत्र सुनाया है, इसके द्वारा मेरी स्तुति करके मनुष्य मेरी भक्ति प्राप्त कर लेगा। यह नामचतु:षष्ठ्यष्टक स्तोत्र श्रेष्ठ, पुण्यतम तथा सब पातकों का नाशक है। जो काशी से दूर देश में रहता है, वह भी यदि प्रतिदिन तीनों समय इस स्तोत्र का जप करे, तो वह श्रेष्ठ एवं शुद्धचित्त होकर दुर्लभ काशी को प्राप्त करेगा। यह स्तोत्र काशी में मोक्षसम्पत्ति प्रदान करता है। अत: मोक्ष की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों को प्रयत्नपूर्वक अनेक स्तोत्रों का परित्याग करके भी इस स्तोत्र का पाठ एवं जप करना चाहिये। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह गभस्तीश्वरलिङ्ग भक्तिभाव से सेवित होने पर सब सिद्धियों का दाता होगा। तुमने भक्तिभाव से चम्पा और कमल के समान कान्तिवाली गभस्तिमालाओं (किरणों) से जो इस ईश्वरलिङ्ग का पूजन किया है, उससे इसका नाम गभस्तीश्वर लिङ्ग होगा। पञ्चगङ्गा में स्नान करके गभस्तीश्वर का पूजन करनेवाला मनुष्य सब पापों से रहित होकर कभी भी माता के गर्भ में जन्म धारण नहीं करेगा। यहाँ तपस्या करते हुए तुम्हारे मयूखसमूह (किरणपुञ्ज) ही देखे गये हैं, शरीर नहीं दिखायी दिया है। अत: अदितिनन्दन! तुम्हारा नाम मयूखादित्य होगा। तुम्हारी पूजा करने से मनुष्यों को कोई रोग–व्याधि नहीं होगी। रविवार को तुम्हारे दर्शन से दरिद्रता का नाश होगा।

इस प्रकार मयूखादित्य को बहुत से वर देकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और सूर्यदेव ने वहीं निवास किया।

(यह कथा गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित कल्याण के स्कंदपुराणांक के काशीखण्ड के अध्याय 49 पर आधारित है।)

❀❀❀❀❀❀

परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे परम्।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड–पूर्वार्ध 41/7)

परायी निन्दा करने से विनाश होता है और अपनी निन्दा से महान् यश प्राप्त होता है।